# संस्कारों की पुण्य परम्परा

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मूल्य : ४.०० रुपये

सन् : २०१०

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

# संस्कारों की पुण्य परम्परा

मानव जाति की सुख–शान्ति एवं प्रगति की सर्वोपरि आवश्यकता का महत्त्व हमारे तत्त्वदर्शी पूर्वज, ऋषि–महर्षि भली प्रकार समझते थे । अतएव इसके लिए उन्होंने प्रबल प्रयत्न भी किये, अपने बहुमूल्य जीवनों को इसी आवश्यकता की पूर्ति के साधन विनिर्मित एवं प्रचलित करने में घुला दिया । उनकी इस पुण्य प्रक्रिया को संस्कृति का सृजन कहा जाय, तो उपयुक्त ही होगा । हमारा सारा धर्म–साहित्य इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए लिखा गया है । योगाभ्यास, ईश्वर, उपासना, तपश्चर्या, इन्द्रिय–निग्रह, संयम, सदाचार, व्रत–उपवास, तीर्थयात्रा, देव–दर्शन, दान–पुण्य, कथा–प्रवचन, यज्ञ–अनुष्ठान आदि का जितना भर भी धर्म कलेवर हमें दृष्टिगोचर होता है उसके मूल में मात्र एक ही प्रयोजन सन्निहित है कि व्यक्ति अधिकाधिक निर्मल, उदार, सद्गुणी, संयमी एवं परमार्थ परायण बनता चला जाय । इसी स्थिति के लिए जिस स्तर की उच्च विचारणा अभीष्ट है, उसका क्रमिक निर्माण उपरोक्त प्रकार की विचारणा एवं कार्य–पद्धति से सम्भव होता है । यह धर्म–प्रयोजन कर्मकाण्ड हमारी चेतना को उस स्तर पर विकसित करने का प्रयत्न करते हैं, जिसे अपनाने पर जीवन अधिक पवित्र, उत्फुल्ल एवं लोकोपयोगी बन सके ।

*धरती पर स्वर्ग अवतरित करने की ऋषि प्रणाली*–केवल शास्त्र रचना एवं धार्मिक विधि निषेधों का प्रचलन करने तक ही ऋषियों ने अपना कर्तव्य समाप्त नहीं समझा वरन् यह भी स्मरण रखा कि इस प्रेरणा को स्थिर एवं अग्रगामी रखने के लिए उन्हें निरन्तर कठोर श्रम भी करना होगा और अपनी शक्ति, सामर्थ्य को उसी पुण्य प्रयोजन में खपा भी देना होगा । उनकी जीवनयापन पद्धति में सर्वोपरि, सर्वाधिक स्थान इसी बात का था कि वे जन–जीवन में धर्म–चेतना सजीव एवं सुविकसित रखने के लिए निरन्तर प्रवचन द्वारा

प्रशिक्षित करते रहें और साथ ही ऐसे रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करते रहें, जिनके माध्यम से धर्म को सचमुच विकास का अवसर मिलता रहे । ब्राह्मणों और सन्तों की जीवन प्रणाली यही है । वे अपने व्यक्तिगत जीवन की सुरक्षा एवं प्रखरता के लिए स्वाध्याय, उपासना, तपश्चर्या, गोपालन, कृषि आदि की व्यवस्था भी रखते थे, पर यह तो शरीर यात्रा मात्र की व्यवस्था हुई । लक्ष्य तो उनका जन जागरण रहता था । जन–जागरण का अर्थ है–व्यक्ति के अन्तःकरण में धर्म–भावना एवं आदर्शवादिता पर सुदृढ़ रहने का सुदृढ़ संकल्प और उस ओर ऊँचे से ऊँचे स्तर तक बढ़ते हुए महापुरुष नर–रत्न बनने का उत्साह एवं साहस । ब्राह्मण एवं सन्त जन समाज के अन्तःकरणों में इसी प्रकार की सद्–प्रवृत्तियों को उगाने–बढ़ाने की कृषि किया करते थे । यही कार्यक्रम उनकी जीवन साधना का सबसे उज्ज्वलपन था । जब तक ब्राह्मण का यह त्याग बलिदान भरा सत्प्रत्न प्रकाशवान् बना रहा तब तक इस देश में सुख–शान्ति की ऐसी अमृतधारा बहती रही, ऐसी शीतल मन्द–सुगन्ध मलय समीर बहती रही, जिससे सारा विश्व अपने को धन्य मानता रहा । आज तो सब कुछ उलटा हो गया है । दुर्भाग्य ने ब्राह्मण और सन्त का लक्ष्य भी उलट दिया । वे अपनी व्यक्तिगत समृद्धि के लिए ऋद्धि–सिद्धियों का उपार्जन करने की अभिलाषा के लोभ में पड़े हैं, बेचारों को मिलना तो है क्या ?

***सर्वश्रेष्ठ परम्परा***–मानव कल्याण की महान परम्पराओं में जितने भी आयोजन एवं अनुष्ठान हैं उनमें सबसे बड़ी परम्परा संस्कारों एवं पर्वों की है । संस्कारों, धर्मानुष्ठानों द्वारा व्यक्ति एवं परिवार को तथा पर्व–त्यौहारों के माध्मय से समाज को प्रशिक्षित किया जाता है । इन पुण्य परम्पराओं पर जितनी ही बारीकी से हम ध्यान देते हैं उतना ही अधिक उनका महत्व एवं उपयोग विदित होता है । पर्व–त्यौहारों की चर्चा अन्यत्र करेंगे, यहाँ तो हम षोडस संस्कारों की उपयोगिता एवं आवश्यकता पर ही थोड़ा प्रकाश डालेंगे ।

यों स्वाध्याय–सत्संग, प्रशिक्षण, चिन्तन, मनन आदि का प्रभाव

मनुष्य की मनोभूमि पर पड़ता ही है और उससे व्यक्ति के भावना स्तर को विकसित करने में सहायता मिलती ही है और इनकी उपयोगिता को स्वीकार करते हुए सर्वत्र इनका प्रचलन रखा भी जाता है पर साथ ही एक बात यह भी ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्तःचेतना को उच्च प्रयोजन के लिए उल्लसित एवं सूक्ष्म बनाने के कुछ वैज्ञानिक उपकरण भी हैं और उनका महत्व स्वाध्याय, सत्संग आदि चलित उपकरणों की अपेक्षा किसी भी प्रकार कम नहीं है। इन व्यक्तित्व निर्माण के वैज्ञानिक माध्यमों को ही "संस्कार" कहा जा सकता है। संस्कार वे उपचार हैं जिनके माध्यम से मनुष्यको सुसंस्कृत बनाना सबसे अधिक संभव एवं सरल है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सुसंस्कारित व्यक्ति के निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में कितनी श्रेयस्कर एवं मंगलमय सिद्धि हो सकती है।

***विज्ञान सम्मत प्रक्रिया***–बालक के गर्भ में प्रवेश करने से लेकर जीवनयापन की विविध परिस्थितियों में से गुजरते हुए शरीर छोड़ने तक विविध अवसरों पर "संस्कारों" का आयोजन करने का हमारे धर्म शास्त्रों में विधान है। इन विधानों से व्यक्ति की अन्तःचेतना पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है और उसका सुसंस्कारी बन सकना सरल हो जाता है। विशिष्ट प्रयोजनों के लिए उपयुक्त, विशिष्ट शक्ति सम्पन्न वेद–मन्त्रों में अपनी विशिष्ट क्षमता होती है, उनका निर्माण ऐसी वैज्ञानिक पद्धति से हुआ है कि विधिवत् सस्वर उच्चारण किये जाने पर वे आकाश तत्व में एक विशिष्ट विद्युत प्रवाह तरंगित करते हैं। उनका प्रयोजन पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसा उस मन्त्र का उद्देश्य है। मन्त्रों की शक्ति प्रसिद्ध है। फिर वेद–मन्त्रों की शक्ति का तो कहना ही क्या ? शब्द शास्त्र के सूक्ष्मदर्शी वैज्ञानिकों ने अगणित प्रयोग परीक्षणों से पूर्वकाल में यह पता चलाया था कि किन शब्दों का किन–किन शब्दों के साथ तालमेल बिठाया जाय और उनका किस प्रकार उच्चारण किया जाय तो उससे किस प्रकार का प्रवाह निःसृत होगा और उसका सुनने वालों पर अथवा जिनके निमित्त उनका उच्चारण किया जा रहा है उन पर क्या प्रभाव होगा ? इसी

निष्कर्ष के आधार पर वेद मंत्र बने हैं और उनमें से किस का किस प्रयोजन के लिए किस प्रकार प्रयोग किया जाय, इसका निर्धारण गृह–सूत्रों एवं कर्मकाण्ड प्रयोजन के लिए विनिर्मित धर्म–ग्रन्थों में हुआ है । यज्ञ उपचार के साथ–साथ इन मंत्रों की शक्ति और भी बढ़ जाती है । जो लोग आहुतियाँ देते हैं, उन पर इन मंत्रों का सीधा प्रभाव पड़ता है । जिस प्रकार बिजली, भाप, अणु, रसायन, पदार्थ–विद्या आदि का अपना विज्ञान है उसी प्रकार मन्त्र–शास्त्र एवं यज्ञादि कर्मकाण्डों का भी अपना विज्ञान है । यदि कोई उसका प्रयोग ठीक प्रकार से कर सके तो मनुष्य के ऊपर उसका असाधारण प्रभाव पड़ सकता है और उस प्रभाव का असाधारण लाभ उठाया जा सकता है । व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने में संस्कार पद्धति का क्रिया–कलाप इतना अधिक सफल हो सकता है कि उससे आज भी आश्चर्यचकित हुआ जा सकता है ।

***मानसिक चिकित्सा की प्रखर पद्धति***–जिस प्रकार अभ्रक आदि सामान्य पदार्थों का आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता अनेक बार अग्नि संस्कार करते हैं और उससे मकरध्वज सरीखी बहुमूल्य रसायनें बनाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य पर षोडस संस्कारों को सोलह बार प्रयोग करके भारतीय धर्मानुगामी को सुसंस्कारी बनाया जाता है । यह विज्ञान अद्भुत है । अब तक शरीरगत दुर्बलताओं एवं बीमारियों के समाधान का ही बहुत करके अन्वेषणं प्रयास किया गया है । आयुर्वेद, होम्योपैथी, तिब्बी एलोपैथी, नेचरोपेथी आदि चिकित्सा पद्धतियाँ प्रायः शरीरगत कष्टों को ही दूर करती हैं । अब हुआ तो पागलों के इलाज के लिए मानसिक अस्पतालों में एक लँगड़ी–लूली, परिक्षणात्मक व्यवस्था चल रही है । सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है मनुष्य की मानसिक विकृतियों एवं दुर्बलताओं के समाधान की । इन्हीं के कारण मानव–जाति को सबसे अधिक कष्ट भोगना पड़ता है । प्रगति के पथ को अवरुद्ध करने वाली प्रधान बाधा यह विकृतियाँ ही हैं, पर इनके निराकरण का कोई उपाय न किसी चिकित्सा पद्धति ने खोजा और न प्राप्त ही किया ।



( संस्कारों की

सनकी, तुनकमिजाज, बहमी, कंजूस, संशयी, अविश्वासी, ओछे, निर्दयी, स्वार्थी, रूखे, कामुक, व्यसनी, चञ्चल, अस्त-व्यस्त, उद्विग्न, आवेशग्रस्त, क्रोधी, अस्थिरमति, भावुक, अन्ध-विश्वासी, दुराग्रही, उच्छृंखल, अहम्मन्य, दुस्साहसी, अतिवादी, शेखीखोर, ईर्ष्यालु मनुष्यों की समाज में कमी नहीं । इस प्रकार के मनोविकार वस्तुतः एक प्रकार के हलके मानसिक रोग ही हैं । जिस प्रकार शरीर में अनेक ऐसे रोग भी होते हैं, जिनका कष्ट तो सहते रहना पड़ता है, पर चारपाई पर गिरने का अवसर नहीं आता । उसी प्रकार मन मस्तिष्क में भी ऐसे कितने ही रोग होते हैं, जिनका प्रभाव मनुष्य को अध-पगले जैसी स्थिति में ले जाकर पटक देता है । यद्यपि वह देखने में सामान्य श्रेणी का ही प्रतीत होता है और उसमें ऐसा लक्षण नहीं दीखता, जिससे उसे पागल खाने में बंन्द किया जा सके । कुसंस्कारी व्यक्ति प्रायः अधपगले जैसी स्थिति में रहते हैं । वे अपनी आदतों के कारण अपने साथी सम्बन्धियों की नाक में दम किये रहते हैं । उनसे प्रायः सभी लोग खिन्न एवं असन्तुष्ट रहते हैं, महत्वपूर्ण कार्य कर सकने की उनकी प्रतिभा भी नष्ट हो जाती है, ऐसी दशा में कोई ऊँची सफलता प्राप्त कर सकेंगे इसकी तनिक भी आशा या सम्भावना नहीं रहतीं । जिन्दगी के दिन किसी प्रकार पूर्ण कर लें, यही उनके लिए बहुत होता है । इस प्रकार की मानसिक अस्त-व्यस्तता मनुष्य का एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य है । खेद है, इस व्यापक दुर्भाग्य के निराकरण के लिए भौतिकवादी जगत में कोई ठोस प्रयत्न नहीं किया गया, अथवा यों कहना चाहिए कि इस दिशा में जो छुट-पुट प्रयत्न किये गये उनमें कोई सफलता नहीं मिली ।

**व्यक्ति निर्माण का उपयुक्त माध्यम**-इस महत्वपूर्ण समस्या पर ऋषियों ने अत्यधिक गम्भीरतापूर्वक विचार किया था । वह उपाय भी खोज निकाला था जिसके आधार पर मानवीय मन को एक विशिष्ट वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर निर्मल, सन्तुलित एवं सुसंस्कृत बनाया जा सके । इस प्रक्रिया का नाम है-संस्कार पद्धति । समय-समय पर षोडश संस्कारों का प्रयोग उपचार मनुष्य के ऊपर इस प्रकार किया

जा सकता है कि उसके मनोविकारों का शमन हो और उन सत्प्रवृत्तियों का विकास हो जिनसे व्यक्तित्व प्रखर बनता है । जीवन में सतत काम आने वाली सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण भी इन संस्कारों के समय ही होता है । यदि किसी बालक के सभी संस्कार ठीक रीति से समुचित वातावरण में किये जायें तो उसका ऐसे सुविकसित व्यक्तित्व से संपन्न होना पूर्णतया संभव है, जिससे उसका जीवन आनन्दमय, प्रतिभा संपन्न, प्रगतिशील एवं सफल बन सके । संस्कार पद्धति को एक प्रकार से मनोविकारों के निराकरण की विज्ञान सम्मत चिकित्सा प्रणाली कहा जा सकता है । उसे व्यक्तित्वों को प्रतिभा सम्पन्न बनाने की सृजनात्मक प्रक्रिया कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी ।

यज्ञ चिकित्सा पद्धति से उन रोगों का निराकरण हो सकना सम्भव है, जो शरीर चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से असाध्य घोषित किये जा चुके हैं । इसी प्रकार उससे मनोविकारों का शमन भी होता है । ब्राह्मण के छः कार्य बताये गये हैं । १—यज्ञ करना, २—यज्ञ कराना, ३—विद्या पढ़ना, ४—विद्या पढ़ाना, ५—दान देना, ६—दान दिलाना । इन छः को तीन जोड़े ही समझना चाहिए । यज्ञ, शिक्षण और दान इन तीन प्रयोजनों में ही ब्राह्मण को लगा रहना चाहिए इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसका एक तिहाई जीवन यज्ञ प्रयोजन में संलग्न रहे । स्पष्ट है कि यज्ञ प्रक्रिया किसी व्यक्ति के साथ जितनी अधिक जुड़ी रहेगी वह उतना ही अधिक मानसिक दृष्टि से निर्मल बनेगा । ब्राह्मण इसी आधार पर अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक पवित्र होते थे, यज्ञानुष्ठानों से उनका अन्तःकरण अधिकाधिक पवित्र होता चला जाता था और वे इस पृथ्वी के मूर्तिमान देवता—भूसुर कहलाते थे । यज्ञानुष्ठानों को छोड़ देने के कारण आज ब्राह्मण समाज अपनी इस प्रतिभा एवं विशेषता को ही खो बैठा । यह यज्ञानुष्ठान ब्राह्मण जाति के लिए ही आवश्यक नहीं होते, वरन् उन सभी के लिए श्रेयस्कर हैं जो अपना मानसिक स्तर उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं, देवत्व की भूमिका में विकसित होना चाहते हैं । संस्कारों



( संस्कारों की

के साथ जो धर्मानुष्ठान जुड़ा हुआ है वह उसी प्रयोजन की पूर्ति करता है । नित्य न सही जीवन का मोड़ उपस्थित करने वाले महत्वपूर्ण अवसरों पर भी यदि वे यज्ञानुष्ठान–संस्कार प्रयोजन के लिए किये जायें तो उतने से भी आशाजनक परिणाम होता है । व्यक्ति निर्माण के प्रयोजन की पूर्ति में भारी सहायतायें मिला करती हैं ।

***कर्मकाण्ड और प्रशिक्षण***–संस्कारों की प्रक्रिया को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । एक–उसका वैज्ञानिक स्वरूप, जो मंत्रोच्चारण, यज्ञानुष्ठान आदि कर्मकाण्डों के रूप में प्रयुक्त होता है । दूसरा प्रशिक्षण–जो मंत्रों की व्याख्या तथा विधि–विधानों के रहस्योद्घाटन के रूप में उपस्थित व्यक्तियों तथा जिसका संस्कार हो उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है । कर्मकाण्ड की वैज्ञानिक प्रक्रिया की थोड़ी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, उसके सम्बन्ध में जितना अधिक कहा जाय उतना ही कम है । जिस प्रकार तीव्र औषधियाँ शरीर पर तत्काल प्रभाव करती हैं, उसी प्रकार इन कर्मकाण्डों का भी सुनिश्चित प्रभाव होता है । यदि ठीक विधि–विधान से उचित समय और उचित वातावरण में इन संस्कारों को कराया जा सके तो उसका प्रभाव असाधारण ही होगा । जिसका अन्न प्राशन ठीक प्रकार से हुआ हो, उसे उदर विकारों से ग्रसित नहीं रहना पड़ेगा । जिसका विद्यारम्भ विधिवत् किया गया है, उसका अध्ययन रुकेगा नहीं । जिसका यज्ञोपवीत ठीक तरीके से किया जाय वह आजीवन मानव धर्म का अनुयायी ही रहेगा । जिन वर–वधू का विवाह उचित रीति के साथ सम्पन्न किया जाय, उनके जीवन में प्रेम की गंगा अविच्छिन्न रूप से ही बहेगी और उनमें द्वेष–दुर्भाव का बीजारोपण कदापि न होगा । इसी प्रकार अन्य संस्कारों की बात है । हर संस्कार का अपना महत्त्व, प्रभाव और परिणाम होता है । आज उन वैज्ञानिक क्रिया–कलापों को लोग भूल गये हैं । या अधूरे, लँगड़े और बेगार टालने जैसे वातावरण में करते हैं । फलस्वरूप उनका प्रभाव भी नगण्य ही होता है । अब हम जब कि भारतीय

संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए कटिबद्ध हुए हैं और प्राचीन भारत के गौरव को पुनः वापस लाने का स्वप्न साकार करने चले हैं तो हमें अपनी महान् संस्कृति के मूलाधार–संस्कारों की प्रक्रिया को भी सजीव करना होगा । अब उनको विधि–विधानों की लकीर पीटने की तरह बेगार या उपेक्षा के वातावरण में नहीं, वरन् पूर्ण उत्साह, श्रद्धा एवं तत्परता के साथ सम्पन्न करने की ओर ध्यान देना होगा । इस ओर जितना ही अधिक ध्यान दिया जायगा उतना ही उसका सत्परिणाम भी सामने आयेगा । हमें वह उपाय करने ही होंगे जिनसे प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी परिवार में प्रत्येक के संस्कारों को कराया जा सके, यह उतना ही उपयोगी एवं आवश्यक माना जाय, जितना कि उसकी भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा आदि की जरूरतों का पूरा किया जाना । साथ ही विधि–विधानों को सुव्यवस्थित रीति से सम्पन्न करा सकने वाले व्यक्तियों का प्रशिक्षण करने की आवश्यकता पूरी करनी होगी ।

**उद्‌बोधन** आवश्यक–संस्कार में प्रयुक्त होने वाली कर्मकाण्ड प्रक्रिया का प्रत्येक अंग अपने आप में रहस्यपूर्ण है । उसमें बड़ा महत्व एवं मर्म छिपा पड़ा है । कर्मकाण्ड कराते समय इन रहस्यों को व्याख्या पूर्वक समझाया जाना चाहिए । साथ ही उन मंत्रों अथवा प्रसंगों के माध्यम से जो प्रशिक्षण दिया जाना है वह भी ऐसे प्रभावशाली ढंग से दिया जाना चाहिए कि जिसका संस्कार हो रहा है केवल वह ही नहीं वरन् अन्य जो भी व्यक्ति उस अवसर पर उपस्थित हों वे सभी प्रभाव ग्रहण करें । संस्कार कराने वाले को उत्तम प्रवक्ता भी होना चाहिए, जो विधानों के रहस्य और मंत्रों के मर्म को ऐसे ढंग से समझा सके कि सुनने वाले उसे भावना पूर्वक हृदयंगम कर सकें । धर्म प्रचार का, कर्तव्य उद्‌बोधन का, व्यक्ति निर्माण का यह प्रशिक्षण ही आगे चलकर हमें प्रमुख आधार बनाना पड़ेगा । इसलिए संस्कारकर्त्ताओं को धर्म एवं संस्कृति का सन्देशवाहक बनकर युग–निर्माता की भूमिका प्रस्तुत करने के लिए तैयार होना होगा । प्राचीन काल में ब्राह्मण ऐसे ही माध्यमों से जन–साधारण तक पहुँचते थे और उनकी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक समस्याओं का

समाधान करने वाले हल प्रस्तुत करते थे । उपर्युक्त वातावरण में, उपयुक्त प्रकार के प्रशिक्षण का प्रभाव भी उपयुक्त ही होना चाहिए । होता भी था और आगे होने वाला भी है । इन दिनों इस सम्बन्ध में लज्जाजनक दुर्दशा परिलक्षित हो रही है, उसका कायाकल्प ही करना होगा । आज तो ग्राम–गुरु और पण्डा, पण्डित जिन्हें नाम मात्र की शिक्षा प्राप्त हुई है, उल्टे सीधे इधर–उधर गन्ध, अक्षत डाल–पटक कर अशुद्ध मंत्रोच्चारण करते हुए किसी प्रकार कर्मकाण्ड की उलटी लकीर पीट देते हैं । वे न तो उन संस्कारों का महत्व एवं रहस्य स्वयं समझते हैं और न यजमानों को समझा सकते हैं । गन्ध, अक्षत इधर–उधर कराने में ही उनका कृत्य पूरा हो जाता है । यह चिन्ह–पूजा वह प्रयोजन पूरा नहीं कर सकती, जिसके लिए इन महान् परम्पराओं का निर्माण किया गया था ।

कर्मकाण्ड की वैज्ञानिक प्रक्रिया से यजमान परिवार को प्रभावित करने के अतिरिक्त यह भी उतना ही आवश्यक है कि इन शुभ अवसरों पर उनके सामयिक कर्तव्यों का उद्‌बोधन भी कराया जाय । संस्कार–उत्सव के अवसर पर परिवार के, पड़ोस के तथा सम्बन्ध परिचय के नर–नारी एकत्रित होते हैं । दुःख और सुख को बाँटकर खाने की प्रथा भारतीय संस्कृति का अंग है । किसी का श्रेय साधन करने वाले संस्कार उत्सव हों और उसके स्वजन सम्बन्धी एकत्रित न हों भला यह कैसे हो सकता है ? घर के सभी लोग अपने इस हर्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिए स्वयं ही तैयार नहीं रहते वरन् प्रीति और अनुरोधपूर्वक अन्य मित्र परिवारों को भी आमंत्रित करके लाते हैं । उस समय स्वभावतः पाँच–पचास व्यक्ति एकत्रित हो जाते हैं । यदि कहीं " कुलिया में गुड़ फोड़ने" की तरह अभी तक यह बेगार भुगती जा रही हो तो अब उसमें घर, परिवार, पड़ोस और परिचय के अधिकाधिक नर–नारी बाल, वृद्ध आमंत्रित किये जायें, ताकि केवल जिसका संस्कार हो रहा है, वही नहीं, वरन् उस वातावरण के शक्ति प्रवाह से एवं धर्म प्रशिक्षण से सभी एकत्रित लोग लाभ उठा सकें ।

*विचार गोष्ठी आयोजन*–प्राचीन काल में यही होता था । संस्कार के अवसर पर उपस्थित उस परिवार एवं पड़ोस के लोगों को संस्कार कराने वाले विद्वान् आचार्य उनके सामयिक कर्तव्यों का प्रेरणाप्रद उद्‌बोधन कराते थे । जीवन जीने की कला, धर्म, अध्यात्म एवं कर्तव्य का मार्ग–दर्शन करते थे । संस्कार के माध्यम से आयोजित इस जनगोष्ठी में मंत्रों की व्याख्या करते हुए आचार्य जो प्रेरणा प्रदान करते थे, उससे सुनने वालों की भावनायें तरंगित हो उठती थीं । वे अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक, सावधान होते थे । इस प्रकार यह दो–तीन घण्टे की धर्म गोष्ठी एक महत्वपूर्ण शिक्षण का प्रयोजन पूरा करती थी । चूँकि हर परिवार में कई–कई व्यक्ति होते हैं और हर व्यक्ति के १६–१६ संस्कार होते हैं, तो स्वभावतः थोड़े–थोड़े दिनों बाद ऐसी धर्म गोष्ठियाँ भी उन घरों में होती रहेंगी । फिर पड़ौस में भी यही सब होता है, तो इसका परिणाम यही होगा कि आये दिन इन धर्म–गोष्ठियों का प्रचलन होता रहेगा । जहाँ ऐसी सुविधा उपलब्ध हो वहाँ के लोग कैसे कुमार्गगामी हो सकेंगे और कैसे पथ भ्रष्ट ?

साधारण वातावरण में किया हुआ प्रशिक्षण इतना प्रभावशाली नहीं होता जितना धर्मोत्साह, उल्लास एवं उत्साह भरे वातावरण में दी हुई शिक्षा हृदयंगम होती है । दाम्पत्य कर्तव्यों की बात किसी पुस्तक में पढ़ ली जाय या बता दी जाय तो वह उतनी प्रभावशाली नहीं होगी, जितनी कि विवाह समारोह के समय जब वर–वधू दोनों एक–दूसरे का हाथ पकड़ कर पाणिग्रहण करते हैं, तब उस समय खड़े होकर उपस्थित संभ्रान्त गुरुजनों के, देवताओं के, जनसाधारण के सामने की हुई प्रतिज्ञायें । वे प्रतिज्ञायें यदि स्वस्थ मन से की गई हों तो आजीवन स्मरण रहेंगी और यदि कोई भूल कर रहा होगा तो एक–दूसरे को उस बात का स्मरण दिलाकर लज्जित एवं सावधान भी कर सकेगा । गंगा में खड़े होकर या गंगाजल को हाथ में रखकर कसम खाने का अवसर आने पर लोग झूँठ बोलते हुए काँपते हैं, पर साधारण स्थिति में बार–बार बोलते रहते हैं ।



( संस्कारों की

धर्मानुष्ठानों का एक बड़ा मनोवैज्ञानिक लाभ या रहस्य यह भी है कि उस समय जो कहा या सुना जायगा वह अत्यधिक प्रभावयुक्त होगा। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान–शास्त्र दोनों ही इस तथ्य की प्रबल पुष्टि करते हैं कि उपयुक्त वातावरण एवं परिस्थितियों में दी गई शिक्षा सामान्य रीति से कहने–सुनने की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। संस्कारों के निमित्त आयोजित गोष्ठियाँ इसी प्रयोजन को पूरा करती हैं। उनके माध्यम से दिये गये प्रशिक्षण का प्रभाव सुनने वालों के अन्तःकरण में गहराई तक प्रवेश करने वाला होना ही चाहिए।

*लोकशिक्षा का अनुपम माध्यम*–लोकशिक्षण का यह तरीका बहुत ही उत्तम है। जन–जन के पास अलग–अलग पहुँच सकना और उन्हें अलग–अलग प्रंशिक्षित कर सकना धर्म प्रचारकों के लिए कठिन है। जनता को एकत्रित करने से ही जन जागरण के उपयुक्त धर्म चर्चा की व्यवस्था बन सकती है। यह कार्य-संस्कारों की स्वस्थ परम्परा प्रचलित करने के अतिरिक्त और किसी प्रकार उतनी अच्छी तरह नहीं हो सकता। इन संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति निर्माण एवं परिवार निर्माण के हर पहलू को समझाया जा सकता है और उपयुक्त प्रेरणा को हर वर्ण एवं हर स्तर के लोगों के मन में गहराई तक उतारा जा सकता है। धर्म के लिए मञ्च तो होना ही चाहिए। जनता को इकट्ठा तो किया ही जाना चाहिए। बड़े सभा सम्मेलनों की अपेक्षा परिवार–परिवार में चलने वाला यह प्रशिक्षण कितना उपयोगी हो सकता है, इसका प्रयोग परीक्षण हजारों लाखों वर्ष तक इस देश में होता रहा है। विद्वान ब्राह्मणों ने इन्हीं प्रक्रियाओं के द्वारा इस देश की जनता को प्रबुद्ध बनाये रखा था और तदनुरूप यहाँ शक्ति, सामर्थ्य, विद्या, बल, वैभव, शौर्य, पराक्रम आदि किसी भी तत्व की कमी नहीं रहती थी। अब पुनः हमें उसी परिपाटी का अवलम्बन करके नव–निर्माण का, सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रयोजन पूरा करना होगा।

आज इन संस्कारों का प्रचलन एक प्रकार से समाप्त ही हो

गया है । हमें क्रमशः उनका विकास करना चाहिए । १६ के स्थान पर अभी १० संस्कारों का प्रचलन पर्याप्त होगा ताकि इस मँहगाई के युग में लोग इस भार को वहन करने से कतराने न लगें । इन दिनों समय, धन, उत्साह, पारस्परिक सहयोग, धर्मनिष्ठा आदि सभी बातों की कमी है, इसलिए देश, काल, पात्र के अनुसार व्यवस्था बनाते, बदलते चलने की ऋषि परम्परा के अनुरूप यह उचित ही होगा कि अभी दस संस्कारों का प्रचलन किया जाय ।

*कुछ असामयिक संस्कार*—यों प्रथम संस्कार गर्भाधान है । प्राचीनकाल में रतिक्रिया वासना के लिए नहीं, संतानोत्पादन के लिए ही होती थी, वह अन्य पशु—पक्षियों की तरह एक बारगी में ही पूर्ण सफल हो जाती थी, पर अब तो जब कि सब कुछ उलटा ही हो गया है और एकान्त मिलन का प्रयोजन वासना की पूर्ति मात्र रह गया है । तब गर्भाधान संस्कार के लिए स्थान ही कहाँ रहा ? फिर उसका परिणाम गर्भस्थापन के रूप में हो जाय, यह भी निश्चित नहीं । ऐसी दशा में अब उस संस्कार को असामयिक ही कहा जा सकता है । हाँ, उसका इतना स्वरूप तो बना ही रहना चाहिए कि प्रत्येक समागम से पूर्व पति—पत्नी वह संकल्प किया करें कि "हम सन्तानोत्पादन एवं उनको सुयोग्य बनाने की सामर्थ्य से सम्पन्न होने के कारण समाज को शरीर और मन से स्वस्थ नागरिक भेंट करने के लिए तत्पर होते हैं । वासना घृणित है, उससे सब कुछ क्षीण होता है, पर सन्तानोत्पादन महान् है । हम लोग रतिक्रिया वासना के घृणित प्रयोजन के लिए नहीं, विश्व मानव को अपना एक उपहार देने के लिए करेंगे । ईश्वर हमारी आकांक्षा पूर्ण करे ।" यह संकल्प उन्हीं के लिए उचित है जो सन्तान का भार उठाने में शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं पारिवारिक दृष्टि से पूर्णतया समर्थ हैं । रतिक्रिया के समय भी यही भावनायें दोनों के मनःक्षेत्र में विचरण करनी चाहिए । ऐसे संकल्प यदि बालक के गर्भ प्रवेश करते समय माता—पिता के मन में भ्रमण करते रहें तो संतान का सुसंस्कारी होना निश्चित है । आज की परिस्थितियों में गर्भाधान संस्कार इतना संक्षिप्त ही रहे तो पर्याप्त

है । उसका विधिवत् कर्मकाण्ड अब नहीं हो सकता । गर्भिणी को गर्भ रक्षा की उचित शिक्षा एवं प्रेरणा देने के लिए पुंसवन और सीमन्त दो बार संस्कार कराने की प्रथा थी । अब इन दो में से एक ही संस्कार रखा जाय तब भी कम नहीं है । इसी प्रकार बच्चे का जन्म होने पर नाल काटने से पूर्व जो जात कर्म संस्कार होता है वह भी अब अव्यावहारिक–सा माना जायेगा । बालक जब भूमि पर आवे तब माता यह भावना करे कि "यह बालक धर्म प्रयोजन की पूर्ति के लिए जन्मे और जिये ।" तो यह भावनायें भी उपयोगी रहेंगी ।

नाक, कान छेदने की प्रथा अब असामयिक हो गई है । लड़कों के कान छेदना तो बहुत दिन से बन्द हो गया । लड़कियाँ भी अबं इसे पसन्द नहीं करतीं । यह उचित भी है । इस प्रकार का छेदना, गोदना अब स्वास्थ्य और सौन्दर्य दोनों ही दृष्टियों से अनावश्यक एवं हानिकारक माना जाता है । यह निश्चित है कि अगले २०–३० वर्ष में भारतवर्ष में लड़कियाँ भी छेदने–गुदाने की प्रथा छोड़ देंगी । हमें इसमें कुछ भी अनुचित प्रतीत नहीं होता । अतएव कर्ण–वेध संस्कार को सोलह संस्कारों में से हटा दिया है । इसी प्रकार अब छात्र गुरुकुलों में गुरुओं के साथ रहने की परिपाटी के अनुसार नहीं वरन् अपने घरों में रहते हुए स्कूल, कालेजों में पढ़ते हैं, ऐसी दशा में गुरुकुल प्रवेश के समय तथा छोड़ते समय जो वेदारम्भ, यज्ञोपवीत और समावर्तन–यह तीन संस्कार प्राचीनकाल में तीन बार होते थे, अब लोग इकट्ठे ही तीनों करा देते हैं । जिस दिन छात्र गुरुकुल में प्रवेश करता है उसी दिन एक–दो घण्टे बाद ही विद्या पूर्ण करके घर जाने की छुट्टी भी पा ले यह उपहासास्पद है । अब इतना ही पर्याप्त है कि इन तीनों के स्थान पर एक यज्ञोपवीत ही करा दिया जाय । इस तरह गर्भाधान, सीमान्त, जातकर्म, कर्णविध, वेदारम्भ, समावर्तन यह छः संस्कार कम करके शेष दस संस्कारों का प्रचलन करने का व्यापक कार्यक्रम हाथ में लेना चाहिए । जिनके लिए सम्भव हो वे भले ही १६ करें, किन्तु

सर्वसाधारण के लिए यही उचित होगा कि जो किया जाय बढ़िया और पूरा किया जाय । संख्या की दृष्टि से बहुत विस्तार करना किन्तु व्यवस्था की दृष्टि से सब कुछ अधूरा रखना ठीक नहीं ।

***पुंसवन की प्रेरणा***–गर्भवती को उसके निजी कर्तव्यों का तथा सारे परिवार को नई आत्मा के आगमन के लिए स्वागत के उपयुक्त वातावरण बनाने का प्रशिक्षण पुंसवन संस्कार के माध्यम से किया जाना चाहिए । धर्मानुष्ठान का जहाँ गर्भस्थ बालक पर प्रेरणाप्रद प्रभाव पड़ेगा वहाँ परिवार के सभी सदस्य यह अनुभव करेंगे कि एक आत्मा के दिव्य अवतरण की पुण्य बेला में उन्हें अपने–अपने कर्तव्यों की तैयारी में क्या–क्या करना है । बालक का उचित प्रशिक्षण एवं निर्माण गर्भावस्था से ही हो जाना चाहिए । यह कैसे किया जाय ? उसको विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयोजन पुंसवन संस्कार से पूरा होगा । व्यक्ति–निर्माण का कार्य यहीं से आरंभ होता है ।

***नामकरण की उपयोगिता***–नामकरण संस्कार के अवसर पर बालक के शारीरिक पालन–पोषण की नहीं मानसिक विकास की विधि–व्यवस्था भी समझाई जाती है, ताकि माता–पिता ही नहीं, परिवार के भी सदस्य इस नवीन आगन्तुक को सुसंस्कृत बनाने में अपनी–अपनी जिम्मेदारियाँ समझें और उनका पालन करें ।

***अन्नप्राशन क्यों ?***–अन्नप्राशन के समय बच्चा तो छोटा होता है, पर परिवार के वयोवृद्ध सदस्यों को यह सिखाया जाता है कि बालक की स्वास्थ्य रक्षा के लिए किस प्रकार कितना और क्या भोजन कराया जाय तथा मानसिक स्वस्थता की दृष्टि से वह अन्न कितना सात्विक एवं संस्कारिक हो । अन्न से शरीर ही नहीं मन भी बनता है, इसलिए बच्चे को शरीर एवं मन की दृष्टि से समर्थ बनाने के लिए उसके आहार पर पूरा ध्यान देना होता है । उसी सतर्कता की शिक्षा अन्न प्राशन के समय दी जाती है और उपस्थित लोगों को यह बताया जाता है कि वे स्वयं भी अपना आहार किस तरह रखें जिससे शरीर और मन से स्वस्थ रहने के अतिरिक्त राष्ट्रीय खाद्य संकट में अपना ठीक योगदान कर सकें ।

***चूड़ाकर्म का मर्म***–चूड़ाकर्म–मुण्डन का अर्थ है–मस्तिष्क को संस्कारवान् बनाने की आवश्यकता पर ध्यान देना । बालक छोटी आयु में ही बहुत कुछ सीख लेता है । कर्म, स्वभाव का तीन चौथाई निर्माण छोटी–सी आयु में हो जाता है । चूड़ाकर्म के समय बाल उतारना ही पर्याप्त नहीं वरन् यह सीखना भी आवश्यक है कि बालक पर वे संस्कार इन दिनों किस प्रकार डाले जायें, जिनके आधार पर वह भावी जीवन में महापुरुषों एवं नर–रत्नों की भूमिका प्रस्तुत कर सके ।

***विद्यारम्भ का श्रीगणेश***–विद्यारम्भ व साक्षरता का श्रीगणेश मनुष्य जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है । बच्चे को पढ़ाना आरम्भ करते हुए परिवार के सदस्यों को शिक्षा का उद्देश्य एवं स्वरूप भी निर्धारित कर लेना होता है और यह अनुभव करना होता है कि जितनी शिक्षा स्कूल में पायी जाती है, उतनी ही उसे घर पर भी मिलती रहे । भाषा, गणित, भूगोल आदि स्कूल में पढ़ाये जाते हैं, तो गुण, कर्म, स्वभाव की शिक्षा परिवार के वातावरण में मिलती है । इस उभय पक्षीय प्रशिक्षण में परिवार के लोग अपनी भूमिका किस प्रकार प्रस्तुत करें, यह शिक्षा विद्यारम्भ संस्कार के समय सारे परिवार को मिलती है ।

***यज्ञोपवीत की प्रेरणा***–यज्ञोपवीत संस्कार–मानवता के आदर्शों को हृदयंगम करने और अपनी जीवन नीति यज्ञीय आदर्शों–लोकहित के लिए जीवन धारण करने के नीति–नियमों पर चलने की प्रेरणा एवं प्रतिज्ञा के निमित्त किया जाता है । बालक थोड़ा–सा समर्थ होते ही यह प्रतिज्ञा करता है कि वह पाशविक आकांक्षा, तृष्णाओं और वासनाओं की पूर्ति के लिए नहीं वरन् मानवता के महान आदर्शों की पूर्ति के लिए जीवन जीयेगा । इस प्रतिज्ञा को वह एक तो धागे की प्रतिमा–सूत्र की तरह आजीवन छाती से चिपटाये रहता है ताकि उसे अपनी जीवन–नीति का सदा स्मरण बना रहे । धागे के रूप में वह उन आदर्शों को सदा ध्यान में रखता है । संस्कार के अवसर पर उपस्थित अन्य लोग भी यह प्रेरणा ग्रहण करते हैं कि

उनकी जीवन–नीति क्या हो और जन्म को किस प्रकार सार्थक बनाया जाय ?

***विवाह के आदर्श व कर्तव्य***–विवाह दो आत्माओं का मिलन एवं एक नये परिवार–नये समाज का सृजन है । इतने महत्त्वपूर्ण कार्य को किन आदर्शों, सिद्धान्तों, नीतियों भावनाओं एवं गतिविधियों के साथ सुसम्पन्न किया जा सकता है, इसकी पूरी विवेचना–व्याख्या विवाह मंत्रों में भरी हुई है । पति–पत्नी को इस विवाह समझौते का पालन किस निष्ठा और तत्परता से करना होगा इसकी स्पष्ट रूप–रेखा, वैवाहिक क्रियाकृत्यों में समाविष्ट है । आवश्यकता इस बात की है कि उनकी व्याख्या ठीक प्रकार की जा सके और इस ढंग से प्रस्तुत किया जा सके कि वर–वधू दोनों उसे दत्तचित्त हो सुनें और पूरी तरह हृदयंगम करें । देवताओं, भद्र–पुरुषों अग्नि की साक्षी में की हुई प्रतिज्ञाओं को यदि ठीक तरह समझा–समझाया जा सके तो हर विवाह एक नवीन अमृत निर्झरिणी प्रवाहित कर सकता है । इसी प्रकार उस मंगलमय धर्मानुष्ठान को विधिवत् कर्मकाण्ड के साथ सम्पन्न कराया जा सके, तो निश्चित है कि वह दोनों पक्षों के लिए परम शुभ होगा एवं मंगलमय परिणाम उत्पन्न करेगा । विधिवत् हुए विवाहों में कदाचित् ही कोई असफल होता हो, शायद ही किसी का अशुभ परिणाम निकलता हो । आज लोग विवाहोत्सव की धूमधाम में तो लगे रहते हैं, पर संस्कार की व्यवस्था एवं महत्ता को उपेक्षित ही पड़ा रहने देते हैं । आवश्यकता इस बात की है कि वर–वधू ही नहीं उपस्थित सभी लोग ध्यानपूर्वक उस धर्मानुष्ठान को देखें और अपने निज दाम्पत्य जीवन में जो विकृतियाँ रहती हों, उन्हें इस संस्कार के होने वाले कर्मकाण्ड एवं प्रशिक्षण के आधार पर अपनी भूल सुधारें और सद्गृहस्थ बनने की पद्धति सीखें ।

***वानप्रस्थ लोकमंगल का माध्यम***–अगला संस्कार वानप्रस्थ है । बच्चे जब कमाऊ हो जायें तब परिवार का उत्तरदायित्व समर्थ बच्चों पर डालें, स्वयं मार्गदर्शन करें और बचा हुआ समय आत्म–कल्याण के लिए, विश्व–मानव की सेवा के लिए लगाने के लिए कदम बढ़ायें

। जीवन की इसी में सार्थकता एवं सफलता है । जो ढलती और आखिरी आयु में भी पेट पालता और तृष्णा वासना की लिप्सा में लगा रहा उसने मानव जीवन का मूल्य ही नहीं समझा । वानप्रस्थ संस्कार विवाह से भी बढ़कर आवश्यक है । व्यक्ति का निज का और समस्त समाज का कल्याण इसी राजमार्ग पर चलने से सम्भव होगा । उच्च आदर्शों के अनुरूप जीवन ढालने और वैसी ही परिस्थितियाँ सारे समाज में उत्पन्न करने के लिए अपनी प्रतिभा को लगा देने की प्रेरणा इस संस्कार में मिलती है । प्राचीनकाल में समाज के हर क्षेत्र में यह वानप्रस्थ ही निस्वार्थ नेतृत्व करते थे । आज इस पुण्य परम्परा के नष्ट हो जाने से प्रखर नेतृत्व के लिए उपयुक्त व्यक्ति न मिलने का संकट उत्पन्न हो गया है । संसार के सामने जितनी भी समस्यायें हैं, उनसे जूझने के लिए प्रसुप्त जन मानस को जागृत करने के लिए जिन प्रबुद्ध लोकसेवियों की एक विशाल सेना आज अभीष्ट है, उसकी उपलब्धि वानप्रस्थ–निस्पृह भावना से ओत–प्रोत धर्म प्रेमी ही करेंगे । यह संस्कार हर सुयोग्य व्यक्ति कराये । इसकी हवा बहने लगे तो इस समाज का कायाकल्प होने में देर न लगे ।

***मरणोत्तर संस्कार***–अन्तिम अन्त्येष्ठि और मरणोत्तर संस्कारों का विधि–विधान है । यह दिवंगत जीवात्मा को सद्‌गति प्रदान करता है और परिजनों को जीवन–मरण के रहस्यों से परिचित कर उन्हें अपने शेष जीवन के सदुपयोग की शिक्षा देता है । साथ ही यह भी प्रेरणा देता है कि स्वर्गीय आत्मा के छोड़ें हुए उन कर्तव्यों–उत्तरदायित्वों को कौन किस प्रकार पूरा करे । मृतात्मा के सद्‌गुणों तथा सत्कर्मों की प्रशंसा करना, उसके द्वारा किये गये उपकारों के लिए श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना, अनुकरणीय बातों से प्रेरणा ग्रहण करना, यह सब क्रियाकृत्य ऐसे हैं, जो मृतात्मा का संस्कार करने के माध्यम से एक नई हलचल उत्पन्न कर सकते हैं और वे अपने जीवन को अधिक सतर्कतापूर्वक सदुपयोग करने को तत्पर हो सकते हैं ।

***लोक शिक्षण की व्यापक पृष्ठभूमि***–प्रत्येक संस्कार का विचार

क्षेत्र इतना विस्तृत एवं व्यापक है कि उस माध्यम से आज की समस्त सामयिक समस्याओं का निरूपण, विवेचन एवं समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है । व्यक्तिगत जीवन की सुसंस्कारिता, पारिवारिक जीवन की अस्त-व्यस्तता एवं सामाजिक जीवन की अव्यवस्था पर तीखे प्रहार इन संस्कार अवसरों पर किये जा सकते हैं और स्वस्थ पथ प्रदर्शन करते हुए उस धर्म समारोह में उपस्थित लोगों का पथ प्रदर्शन किया जा सकता है । जब हर व्यक्ति के दस संस्कार होंगे और हर परिवार में औसतन पाँच-छः व्यक्ति भी होंगे तो ऐसे प्रशिक्षण के अवसर उस घर में पचास बार आयेंगे । मोहल्ला-पड़ोस, गाँव वालों में सौ घर भी अपने सम्पर्क व्यवहार के हों तो पाँच हजार बार ऐसे प्रेरणाप्रद प्रशिक्षण उस क्षेत्र के हर व्यक्ति को मिलते रह सकते हैं । यदि संस्कारकर्त्ता सुयोग्य हैं तो वह उतने प्रयत्न प्रशिक्षण द्वारा निश्चित रूप से उस क्षेत्र में धर्म भावनायें परिप्लावित कर सकता है । जन-जागरण और लोक-निर्माण का उद्देश्य पूरा करने के लिए इससे उत्तम और कोई प्रकार हो ही नहीं सकता । ऋषियों ने मानव तत्त्व के गहन विश्लेषण एवं अध्ययन के पश्चात यह प्रथा-परम्परा प्रचलित की थी । संस्कारों की पुण्य प्रणाली के आधार पर उनने इस देश के बच्चे-बच्चे को सुसंस्कृत बनाये रहने में सफलता प्राप्त की थी । यदि हमें अपना पुनरुत्थान वस्तुतः करना ही हो तो इस परम्परा को पुनर्जीवित करना ही होगा ।

***लकीर ही न पिटती रहे***-यों लकीर पीटने की तरह अभी भी जहाँ-तहाँ संस्कार होते हैं, पर उनमें पूजा-पाठ की लँगड़ी-लूली, लकीर पीटने के अतिरिक्त लोक शिक्षण का नाम भी नहीं लिया जाता । फिर ये तथाकथित पण्डित पुरोहितों की मनमानी आजीविका का निमित्त बन जाने से मँहगे भी इतने हो गये हैं कि हर आदमी उन्हें कराने की हिम्मत भी नहीं करता । जिन लोगों में यज्ञोपवीत संस्कार कराने की प्रथा है वे जानते है कि यह छोटा-सा धर्मानुष्ठान सैकड़ों हजारों रुपये का चूरन कराये बिना सम्पन्न हो ही नहीं सकता । विवाहों में होने वाला खर्च तो अब एक सामाजिक उन्माद

की स्थिति में पहुँच चुका है । आज के मँहगाई के जमाने में इतने खर्चीले और उपयोगिता रहित कर्मकाण्ड चल नहीं सकते । एक तो लोगों की वैसे ही धर्मनिष्ठा घट रही है, इस पर भी इतने खर्चीले तथा रूखे अनुपयोगी हों तो फिर उनकी ओर से जनता विमुख होगी ही, आज हो भी चली है । हमें इस स्थिति को बदलना होगा और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी होगी, जिसमें खर्च कम से कम और उपयोगिता अधिक से अधिक बढ़े ।

इस सन्दर्भ में सबसे प्रथम आवश्यकता ऐसे प्रशिक्षित संस्कारकर्त्ताओं की है जो न केवल विधिवत् इन धर्मानुष्ठानों के कर्मकाण्डों को ही करा सकें वरन् प्रभावशाली ढंग से प्रवचन, विवेचन और प्रशिक्षण भी कर सकें । इस अभाव की पूर्ति के लिए सुशिक्षित व्यक्तियों को आगे आना चाहिए । उन्हें यह विद्या सीखनी चाहिए । सीखने का समुचित प्रबन्ध गायत्री तपोभूमि, मथुरा में है । जगह–जगह ऐसे शिविर लगाने का प्रबन्ध किया है, जिसमें स्थानीय लोगों को संस्कार कराने का विधान कार्यक्रम एवं प्रवचन सिखाया जा सके । जिनकी रुचि इस सम्बन्ध में हो उनके लिए उसी प्रकार का प्रबन्ध हो सकता है । पुरानी चाल के पण्डित–पुरोहितों को भी यह सब सीखना चाहिए अन्यथा समय आगे बढ़ जायगा और वे पीछे रह जायेंगे । तब उन्हें अपने सम्मान और व्यवसाय दोनों से ही हाथ धोना पड़ेगा । अनुपयोगी कार्य अथवा व्यक्ति केवल परम्परा के आधार पर अधिक दिन तक यथास्थान बने नहीं रह सकते । इसलिए समय रहते उन्हें अपने को योग्य बना लेना चाहिए कि समय की माँग के अनुसार उनकी उपयोगिता बनी रहे । संस्कारों की विधि–व्यवस्था का प्रशिक्षण अधिकाधिक लोग प्राप्त करें तभी उनका व्यापक रूप में प्रचलन सम्भव हो सकता है ।

***प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता***–संस्कार कराने का कार्य युग निर्माण शाखायें सामूहिक रूप से भी कर सकती हैं । उसके कार्यकर्त्ता आवश्यक पूजा सामग्री, मण्डप, वेदी कलश, चौकी आदि सभी उपकरण तैयार रखें । उनकी टूट–फूट तथा खर्च का

आनुमानिक शुल्क रख लिया जाय । एक स्थान पर हर चीज थोड़े किराये या मूल्य पर मिल जाने से संस्कार कराने वालों को बहुत सुविधा मिलेगी । समय और श्रम बचेगा । हर संस्कार की छोटी-छोटी पुस्तकें छपी हुई हैं । कुछ व्यक्ति उसे कई पाठ करके बोलने में सरल बनालें और जहाँ भी संस्कार हो वहाँ कई व्यक्ति एक साथ एक स्वर से मन्त्रोच्चारण करते हुए कर्मकाण्ड करायें तो उसका स्वरूप भी प्रभावशाली बन जाता है । संस्कारों की दक्षिणा शाखाओं को मिलने लगे तो उस पैसे से जन-जागरण के सार्वजनिक कार्यों में बड़ी सहायता मिल सकती है । जो लोग दक्षिणा लेते हुए शमति-सकुचाते हैं, वे निःशुल्क कार्यकर्त्ता संतुष्टि प्राप्त कर सकते हैं, दक्षिणा संस्था के उपयोग में आ सकती है ।

जो व्यक्ति पूरा समय इसं कार्य में लगावें वे अपने परिवार का गुजारा भी अच्छी तरह इस आजीविका द्वारा कर सकते हैं । संस्कारों के अवसर पर आचार्य को कुछ दक्षिणा देने का प्रचलन सर्वत्र है । इस पारिश्रमिक को लेने में संकोच नहीं करना चाहिए । जो अपना पूरा समय जन-जागरण के लिए लगाते हैं और जिनके पास निजी अतिरिक्त आय नहीं है, ऐसे प्रबुद्ध संस्कारकर्त्ताओं की संख्या यदि एक लाख भी हो तो वह इस जागरण के कार्य में भली प्रकार खप सकते हैं और उनकी आजीविका का प्रश्न सहज ही हल हो सकता है । सच्ची लगन के संस्कारकर्त्ता यदि हर जगह तैयार किये जा सकें तो उनके द्वारा नये समाज का नया निर्माण कर सकना तनिक भी कठिन न रहे ।

जो लोग संस्कार करायें उनके ऊपर अनावश्यक व्यय भार नहीं पड़ना चाहिए । हवन तथा पूजन सामग्री का व्यय दो-तीन रुपया तक होना ही पर्याप्त है । घर, कुटुम्ब, पड़ौस, नाते-रिश्ते के तथा परिचय के समीपवर्ती लोगों को उस अवसर पर अवश्य एकत्रित किया जाय और यह प्रयत्न किया जाय कि इनकी संख्या अधिकाधिक हो, उत्सव की समाप्ति पर यज्ञावशिष्ट खीर या हलुआ का थोड़ा-थोड़ा प्रसाद अथवा पंचामृत वितरित किया जा सकता है । छोटे संस्कारों में दो रुपया दक्षिणा से काम चल सकता है । जहाँ अर्थाभाव हो, वहाँ

सभी मदों में कटौती करके एक–दो रुपये से भी काम चलाया जा सकता है । विधान कम खर्च से भी पूरा हो सकता है और प्रवचन के लिए तो आर्थिक बाधा कुछ आड़े नहीं आती ।

***प्रचलन अपने घर से***–यह प्रचलन पहले युग निर्माण योनजा शाखाओं के सदस्य अपने यहाँ से करने लगें तो उसका प्रभाव दूसरों पर पड़ेगा और वे भी इस आकर्षक एवं उपयोगी धर्मकृत्य को अपने यहाँ कराने की आवश्यकता अनुभव करेंगे । हर घर में संस्कारों के अवसरों पर नये–नये व्यक्ति सम्मिलित होंगे । जब वे देखेंगे कि कितने सस्ते में, कितना प्रेरणाप्रद, उपयोगी एवं आवश्यक धर्मकृत्य सम्भव हो सकता है तो वे सोचेंगे कि वैसा आयोजन अपने यहाँ भी करना चाहिए । देखा गया है कि जहाँ इस तरह से संस्कार कराये गये, वहाँ तत्काल उपस्थित लोगों में से अनेकों ने अपने–अपने यहाँ भी वैसी ही व्यवस्था कराने का अनुरोध किया । जहाँ के लोग संस्कारों के बारे में एक प्रकार से उदासीन या अपरिचित थे, वहाँ आँधी–तूफान की तरह यह आयोजन प्रचलित हुए और उस क्षेत्र के लोगों के विचार एवं कार्य बदलने में भारी प्रगति हुई ।

हमारा देश धार्मिक देश है । यहाँ हर कार्य धर्म के माध्यम से जितनी अच्छी तरह हो सकता है, उतना और किसी तरह नहीं । आजादी की लड़ाई तक हमने महात्मा गाँधी की जय, भारतमाता की जय बोलकर और रामराज्य का सपना दिखा कर जीती है । जनता के सहयोग का बहुत बड़ा कारण यह आधार भी रहे हैं । लोक शिक्षण का महान कार्य हमें धर्म मंच से ही करना होगा । कोई आधार ऐसा ढूँढ़ना होगा जिससे जनता आसानी से अधिक संख्या में एकत्रित हो, भावनात्मक उत्साह प्रदीप्त रहे और उन आयोजनों के खर्च का भार भी लोग स्वयं ही उठा लें । यह तीनों ही बातें संस्कार परम्परा प्रचलित करने से पूरी होती हैं । जन–जागरण को इससे उपयुक्त अवसर और किसी तरह इस धार्मिक दशा में मिल नहीं सकता ।

पुराने समय में बहुत लम्बे–चौड़े कर्मकाण्ड इन संस्कारों के लिए प्रयुक्त होते थे । समय भी बहुत लगता था और झंझट भी बहुत थे,

जिसके कारण सर्वसाधारण को बड़ी अड़चन अनुभव होती थी । प्रस्तुत योजना के अन्तर्गत इसमें थोड़ा सुधार किया गया है । शास्त्रीय उद्देश्यों की पूर्णतया रक्षा करते हुए भी उन्हें संक्षिप्त तथा सरल बना दिया है साथ ही यह भी ध्यान रखा गया है कि उनकी उपयोगिता महत्ता एवं आकर्षण में किसी प्रकार की कमी न आने पावे । संस्कार कराने वाले आचार्यों का यह कर्तव्य है कि सुन्दर मण्डप, यज्ञवेदी, रंग-बिरंगे चौक, रँगे हुए कलश, झण्डी, आदर्श वाक्य, चित्र आदि से संस्कारों के वातावरण को अधिकाधिक सुन्दर एवं आकर्षक बनावें । आयोजन में सम्मिलित व्यक्तियों को यथास्थान बिठाकर उनके द्वारा भी मन्त्रोच्चारण, आशीर्वाद, स्वस्ति वाचन, तिलक तथा पूर्णाहुति आदि कृत्य कराने चाहिए तथा वे लोग भी अपने संस्कार आयोजन का एक भागीदार संमझें और अन्त तक यथास्थान बैठकर पूरी बात देख-सुन सकें । जो लोग इस प्रकार भाग लेते हैं वे संस्कार प्रणाली के समर्थक ही नहीं, प्रचारक भी बन जाते हैं और फिर उनके द्वारा इस प्रकार परम्परा के प्रचलन में बड़ी आसानी मिलती है ।

*प्रभावोत्पादक वातावरण*–संस्कार करते समय का दृश्य सुसज्जा एवं वातावरण यथासम्भव अधिकाधिक आकर्षक होना चाहिए । चार बाँस खड़े करके कपड़े की छाया तथा झल्लर लगाकर वैसा मण्डप बनाया जा सकता है, जैसा कि विवाहोत्सव के समय होता है । कलश से सुसज्जित चौकी, दीपक, गायत्री माता का सजा हुआ चित्र, देवताओं तथा महामानवों के चित्र, आदर्श वाक्य, झण्डियाँ, वन्दनवार आदि से संस्कार स्थली भलीभाँति सजाई जाय । उसे रंग-बिरंगे चौक पूर कर सजा दिया जाय । यजमान और यजमान की पत्नी के लिए बढ़िया आसन अथवा चौकी हो, दोनों को पीत-वस्त्र धारण कराके बिठाया जाय, बालक का संस्कार होना हो तो माता-पिता के साथ उसे भी पीतवस्त्र ही धारण कराये जायें । फूलों के गुलदस्ते छोटे-छोटे फलों से गुथे वन्दनवार आदि की व्यवस्था जितनी अच्छी होगी संस्कार का वातावरण उतना ही सुरुचिपूर्ण एवं प्रभावशाली रहेगा ।

संस्कारों में काम आने वाली सभी वस्तुयें एक बार शाखा संगठन की ओर से खरीद कर रख ली जायें । टूट–फूट के लिए कुछ शुल्क रख लिया जाय, जिसके यहाँ संस्कार हो वह उतना शुल्क दे और ले जाने पर वापस करने का उत्तरदायित्व उठाये । हवन सामग्री समिधा, यज्ञोवीत, कलावा, रोली, चन्दन, आरती आदि सभी सामान संस्कार कराने वाले जुटाकर रखें और उसका मूल्य यजमान से ले लें । दही, दूध, पुष्प, घी, पल्लव आदि ऐसी वस्तुयें जो समय पर अपेक्षित होती हैं और आसानी से मिल जाती हैं, यजमान के जिम्मे की जायें और संस्कार आरम्भ कराने से पूर्व यह देख लिया जाय कि सब चीजें आई या नहीं ताकि बीच में कोई गतिरोध उपस्थित न हो । जो संस्कार कराना हो उसकी कम से कम दस पुस्तकें भी प्रस्तुत रहनी चाहिए ताकि वहाँ उपस्थित सभी सुशिक्षित लोग एक स्वर, एक लय और एक साथ मंत्रोच्चार कर सकें । इस प्रकार की सुन्दर व्यवस्था यदि पहले से ही बना ली जाय तो संस्कारों का कार्यक्रम बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक बन सकता है ।

सुसंस्कृत समाज की अभिनव रचना के लिए हमें संस्कारों का प्रचलन करना ही चाहिए । इस माध्यम से जन साधारण में उसके धर्म कर्तव्य, विवेक एवं सद्भाव को आशाजनक ढंग से जगाया जा सकता है । कर्मकाण्डों की ऋषि प्रणीत, अध्यात्म विज्ञान सम्मत पद्धति तथा प्रेरणाप्रद प्रवचनों के उभय पक्षीय प्रयोग समस्त भारतभूमि में फिर धर्म भावनाओं का उभार लावेंगे और हम तेजी से प्राचीन गौरव एवं वर्चस्व को प्राप्त कर सकने में समर्थ होंगे, ऐसा निश्चय ही समझना चाहिए ।

संस्कारों का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक जीवन और धार्मिकता के भावों की वृद्धि करना ही है । विविध इन्द्रिय भोगों की तरफ तो मनुष्य का आकर्षण शीघ्र ही हो जाता है । मानव स्वभाव की इसी कमजोरी को देखकर मनीषियों ने संस्कारों का निर्माण और प्रचलन किया था । उन्होंने समझ लिया था कि जब तक मनुष्यों को धार्मिक कर्तव्यों का स्मरण निरन्तर न कराया जाता रहेगा तब तक वे

अधिकांशतः चरित्रहीनता और अनैतिकता की तरफ ही झुकेंगे । इसलिए उनको बीच–बीच में ऐसे अवसर मिलने चाहिए जिससे वे सामूहिक रूप से मिलकर बैठें, धर्म चर्चा करें और धार्मिक कार्यों को प्रत्यक्ष रूप से आयोजित करके उनसे प्रेरणा लें । संस्कारों का विधान ऐसा बनाया गया है जिसमें मनुष्यों को अपना कुछ लाभ जान पड़े तथा सामाजिक समारोह के रूप में कुछ मनोविनोद का अवसर भी प्राप्त हो । जब किसी बच्चे का कोई संस्कार होता है और उसमें प्रायः सभी संबंधी और अड़ौसी–पड़ौसी भाग लेते हैं, तो उन सबको मिलने–जुलने का अवसर तो प्राप्त होता ही है, साथ ही यदि कार्यक्रम का संचालन बुद्धिमत्तापूर्वक किया जाय तो उससे प्रत्येक व्यक्ति हितकारी शिक्षायें और प्रेरणायें भी ग्रहण कर सकता है ।

यदि हम प्राचीन "गृह्य सूत्रों" में दिये गये इन संस्कारों के विधि–विधानों का बारीकी के साथ अध्ययन करें तो उनका उद्देश्य यही जान पड़ता है कि लोग उनसे अपने गृहस्थ जीवन, पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवन को कल्याणकारी ढंग से जीने की कला सीख सकें । खेद की बात यही है कि मध्यकाल में अज्ञान अन्धकार का युग आ जाने के कारण लोग उन संस्कारों की महान शिक्षाओं को तो भूल गये और मनोरंजन, खाना–पीना, दावत आदि को ही उनका सार समझ लिया । इसमें उनका खर्च तो बहुत बढ़ गया पर वास्तविक लाभ शून्य रह गया । कितने ही लोगों ने संस्कारों को असुविधाजनक समझकर बिल्कुल छोड़ दिया । इसलिये यदि पाठक उपरोक्त विवेचन से संस्कारों के सच्चे स्वरूप को समझकर उनको प्रभावशाली ढंग से मनाने का प्रचलन करेंगे तो उससे देश और समाज के उत्थान में वहुमूल्य सहायता मिलना सुनिश्चित है ।

◉

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

# गायत्री विद्या सैट

| | |
|---|---|
| १. गायत्री साधना और यज्ञ प्रक्रिया | ९.०० |
| २. गायत्री की शक्ति और सिद्धि | ९.०० |
| ३. गायत्री की युगांतरीय चेतना | ९.०० |
| ४. गायत्री की प्रचंड प्राण ऊर्जा | ९.०० |
| ५. गायत्री की उच्चस्तरीय पाँच साधनाएँ | १०.०० |
| ६. देवताओं, अवतारों और ऋषियों की उपास्य गायत्री | ९.०० |
| ७. गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार | ९.०० |
| ८. गायत्री का सूर्योपस्थान | ९.०० |
| ९. गायत्री और यज्ञ का अन्योन्याश्रित संबंध | ९.०० |
| १०. गायत्री साधना से कुंडलिनी जागरण | ९.०० |
| ११. गायत्री का ब्रह्मवर्चस | १०.०० |
| १२. गायत्री पंचमुखी और एकमुखी | १०.०० |
| १३. महिलाओं की गायत्री उपासना | ९.०० |
| १४. गायत्री के दो पुण्य प्रतीक शिखा और सूत्र | ९.०० |
| १५. गायत्री का हर अक्षर शक्तिस्रोत | १०.०० |
| १६. गायत्री साधना की सर्वसुलभ विधि | ९.०० |
| १७. गायत्री पंचरत्न | ९.०० |
| १८. गायत्री के अनुष्ठान और पुरश्चरण साधनाएँ | ९.०० |
| १९. गायत्री की चौबीस शक्तिधाराएँ | ९.०० |
| २०. गायत्री विषयक शंका समाधान | ९.०० |
| २१. गायत्री का वैज्ञानिक आधार | ७.०० |
| २२. गायत्री महाविज्ञान (प्रथम भाग) | ५०.०० |
| २३. गायत्री महाविज्ञान (द्वितीय भाग) | ५०.०० |
| २४. गायत्री महाविज्ञान (तृतीय भाग) | ५०.०० |

# मिशन की पत्रिकाएँ

**( १ ) अखण्ड ज्योति** (मासिक)

(धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का विज्ञान एवं तर्क-तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर खरा चिंतन)

वार्षिक शुल्क-108.00, आजीवन शुल्क-2000.00 रुपया।

**अखण्ड ज्योति अंग्रेजी** (द्वि-मासिक)

वार्षिक शुल्क-78.00 रुपया

**पता : अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा-281003**

फोन : (0565) 2403940

**( २ ) युग निर्माण योजना** (मासिक)

(व्यक्ति, परिवार, समाज निर्माण एवं सात आंदोलनों की मार्गदर्शक पत्रिका)

वार्षिक शुल्क-54.00, आजीवन शुल्क-1000.00 रुपया।

**युग शक्ति गायत्री** (गुजराती मासिक)

(गायत्री महाविज्ञान, धर्म, अध्यात्म एवं युगानुकूल विचार परिवर्तन का मार्गदर्शन)

वार्षिक शुल्क-85.00, आजीवन शुल्क-1800.00 रुपया।

**पता : युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-3**

फोन : (0565) 2530128, 2530399

फैक्स : (0565) 2530200

**( ३ ) प्रज्ञा अभियान** (पाक्षिक)

(युग निर्माण मिशन के क्रियाकलापों एवं मार्गदर्शन का समाचार-पत्र)

वार्षिक शुल्क-30.00 रुपया।

**पाक्षिक वीडियो पत्रिका : युग प्रवाह**

(युग निर्माण मिशन के प्रमुख क्रियाकलापों की

वार्षिक शुल्क-1500.00 रुपया।

**पता : शांतिकुञ्ज, हरिद्वार ( उत्तराखंड ) फो**

YS 22

4/-